अमेरिका-अफगान वार्ता और भारत के निहितार्थ

drishtiias.com/hindi/current-affairs-news-analysis-editorials/news-editorials/19-09-2019/print

इस Editorial में The Hindu, The Indian Express, Business Line आदि में प्रकाशित लेखों का विश्लेषण किया गया है। हाल ही में रद्द हुई अमेरिका-तालिबान वार्ता तथा वार्ता की सफलता या असफलता के संदर्भ में भारत के पक्षों पर चर्चा की गई है। आवश्यकतानुसार, यथास्थान टीम दृष्टि के इनपुट भी शामिल किये गए हैं।

संदर्भ:

हाल ही में अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप ने अफ़गानिस्तान में सुलह के लिये अमेरिका के विशेष प्रतिनिधि जालमे खलीलजाद और तालिबान के बीच दोहा में नौ माह से जारी उस प्रक्रिया को पलट दिया जिसके तहत अफगानिस्तान से अमेरिकी सैन्य बलों की वापसी के लिये और इसके बदले तालिबान द्वारा आतंकी गतिविधियों पर अंकुश लगाने की प्रतिबद्धता व्यक्त करने हेतु एक समझौता संपन्न होना था। इस बाबत अगस्त 2019 के अंत तक समझौते का एक मसौदा भी तैयार कर लिया गया था। लेकिन 8 सितंबर, 2019 को अमेरिकी राष्ट्रपति ने अफगान-तालिबान के साथ 'कैंप डेविड' में होने वाली गोपनीय बैठक को रद्द कर दिया। उल्लेखनीय है कि कैंप डेविड वही जगह है जहाँ ऐतिहासिक मिस्र-इज़राइल समझौता संपन्न हुआ था जिसके लिये मिस्र के राष्ट्रपति अनवर अल-सादात और इजराइली प्रधानमंत्री मेनाचेम बेगिन (Menachem Begin) को वर्ष 1978 का नोबेल शांति पुरस्कार दिया गया था।

वार्ता को भंग करने का कारण

अमेरिकी राष्ट्रपति द्वारा इस वार्ता को स्थगित करने का तात्कालिक कारण वार्ता से कुछ ही दिन पहले मध्य काबुल में हुए आत्मघाती कार बम विस्फोट को बताया गया। तालिबान ने इस हमले की ज़िम्मेदारी भी ली। अमेरिकी विदेश मंत्री माइकल पोम्पियो ने भी वार्ता के भंग होने के लिये इसी घटना को तात्कालिक कारण बताया। लेकिन अधिकांश विश्लेषकों का मानना है की वार्ता भंग करने की असली वजह यह नहीं है जो कि अमेरिकी राष्ट्रपति या वहाँ के विदेश मंत्री द्वारा बताई गई है।

- जनवरी में वार्ता के आरंभ के समय से ही तालिबानी हमलों की संख्या में लगातार वृद्धि हुई थी।
- टाइम मैगज़ीन ने भी यह दावा किया है कि इस समझौते के दो हस्ताक्षरकर्त्ताओं (अमेरिकी विदेश मंत्री माइक पोम्पियो और तालिबान के मुख्य वार्ताकार मुल्ला बरादर) में से एक माइक पोम्पियो इस समझौते को लेकर उत्साहित नहीं थे क्योंकि युद्धविराम अथवा 'अंतर-अफगान वार्ता' में भागीदारी के लिये तालिबान की ओर से कोई गारंटी प्राप्त नहीं हुई थी। ऐसे में यह संभव है कि राष्ट्रपति ट्रंप इस समझौते को समाप्त करने के लिये एक विकल्प की तलाश कर रहे हों और 5 सितंबर को काबुल में हुए आतंकी हमले से उन्हें समझौता रद्द करने का एक कारण मिल गया।

क्या प्रस्तावित था बैठक में?

- अमेरिकी राष्ट्रपति द्वारा किये गए ट्वीट से पहली बार यह खुलासा हुआ कि उन्होंने कैंप डेविड में अलग-अलग वार्ताओं के लिये अफगानिस्तान के राष्ट्रपति और तालिबान को आमंत्रित किया था। न्यूयॉर्क टाइम्स के अनुसार, ट्रंप की योजना किसी “बड़ी घोषणा" के माध्यम से अफगान सरकार और तालिबान को एक साथ लाने की थी। यद्यपि कई अमेरिकी मीडिया आउटलेट्स द्वारा यह दावा भी किया गया है कि यह गुप्त बैठक राष्ट्रपति ट्रंप के ट्वीट के दो दिन पहले ही रद्द की जा चुकी थी।
- यह भी प्रतीत होता है कि समझौते पर हस्ताक्षर होने से पहले तालिबान ऐसी किसी बैठक में शामिल होने की इच्छा नहीं रखता था। क्योंकि उसे आशंका थी कि इस तरह की बैठक में उस पर अफगानिस्तान के राष्ट्रपति के साथ वार्ता करने और युद्धविराम को स्वीकार करने के लिये दबाव डाला जाएगा।
- संभवतः यह बैठक राष्ट्रपति ट्रंप की घरेलू राजनीति के लिये प्रतिकूल हो सकती थी। क्योंकि 11 सितंबर के आतंकवादी हमलों की वर्षगाँठ से दो दिन पहले ओसामा बिन लादेन और अल-कायदा को शरण देने वाले तालिबान की मेज़बानी करना घरेलू जनमत के दृष्टिकोण से अत्यंत प्रतिकूल दृष्टांत साबित हो सकता था।

तालिबान की प्रतिक्रिया

तालिबान ने इस्लामिक अमीरात के लेटरहेड पर एक आक्रोशपूर्ण बयान जारी किया जिसमें उसने एक ओर शांति के लिये अपनी प्रतिबद्धता जताई तो दूसरी ओर और अधिक हिंसा की धमकी भी दी। तालिबान द्वारा जारी बयान के अनुसार, समझौते पर हस्ताक्षर और उसकी घोषणा के बाद वे 23 सितंबर को अंतर-अफगान वार्ता की शुरुआत करने वाले थे, लेकिन अब-

- समझौता वार्ता के अंत की घोषणा अमेरिका को किसी भी अन्य पक्ष की तुलना में अधिक हानि पहुँचाएगी;
- इसके परिणामस्वरूप उसकी विश्वसनीयता में कमी आएगी और विश्व के समक्ष उसका शांति-विरोधी रुख उजागर होगा;
- इससे अमेरिका के राजनीतिक संवाद के प्रति अविश्वसनीयता की भावना प्रकट होगी।

कौन हैं तालिबान?

तालिबान पश्तो भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ है ‘छात्र’। तालिबान का उदय 1990 के दशक में उत्तरी पाकिस्तान में हुआ, जब सोवियत सेना अफगानिस्तान से वापस जा चुकी थी। 1980 के दशक के अंत में सोवियत संघ के अफगानिस्तान से जाने के बाद वहाँ कई गुटों में आपसी संघर्ष शुरू हो गया था और मुजाहिदीनों से भी लोग परेशान थे। ऐसे हालात में जब तालिबान का उदय हुआ था तो अफगान लोगों ने उसका स्वागत किया था। लेकिन अफगानिस्तान के परिदृश्य पर पश्तूनों की अगुवाई में उभरा तालिबान 1994 में सामने आया। इससे पहले तालिबान धार्मिक आयोजनों या मदरसों तक सीमित था, जिसे ज़्यादातर पैसा सऊदी अरब से मिलता था। धीरे-धीरे तालिबान ने अफगानिस्तान में अपना दबदबा बढ़ाना शुरू किया और बुरहानुद्दीन रब्बानी सरकार को सत्ता से हटाकर अफगानिस्तान की राजधानी काबुल पर क़ब्ज़ा कर लिया। 1998 तक लगभग 90 फीसदी अफगानिस्तान पर तालिबान का नियंत्रण हो गया था। लेकिन 9/11 के बाद अफगानिस्तान में अमेरिकी सेना की कार्रवाई में तालिबान का लगभग सफाया हो गया था और वहाँ की सत्ता उदारपंथियों के हाथों में आ गई।

अफगान सरकार की प्रतिक्रिया

- अफगान सरकार पहले से ही इस वार्ता को लेकर असंतुष्ट थी और उसे तालिबान की मांग पर वार्ता की पूरी प्रक्रिया से बाहर रखा गया था। एक लोकतांत्रिक देश के निर्माण में योगदान करने वाले अफगानों में यह भय था कि अफगानिस्तान से अमेरिका के बाहर निकलने पर पुनः वर्ष 1996 के परिदृश्य की वापसी होगी जहाँ तालिबान बलपूर्वक सत्ता पर नियंत्रण स्थापित करेगा। उन्हें यह भी संदेह था कि कुल मिलाकर यह वार्ता एक प्रॉक्सी के माध्यम से अफगानिस्तान पर नियंत्रण स्थापित करने की पाकिस्तान की योजना पर किया गया अमल है।

- अफगानिस्तान सरकार द्वारा जारी वक्तव्य के अनुसार, अफगानों के विरुद्ध हिंसा में वृद्धि का तालिबानी हठ, जारी शांति वार्ता के लिये एक प्रमुख बाधा है। सरकार ने लगातार इस बात पर ज़ोर दिया है कि तालिबान एक समावेशी युद्धविराम की नीति अपनाए और अफगान सरकार के साथ प्रत्यक्ष समझौता वार्ता में संलग्न हो जिससे वास्तव में शांति संभव है।

क्या तालिबान के साथ वार्ता को समाप्त मान लिया जाना चाहिये?

- इस बारे में कुछ भी कह पाना कठिन है। ट्रंप द्वारा उत्तर कोरिया के किम जोंग-उन के साथ वार्ता रद्द करने की घोषणा के बाद पुनः उसकी बहाली की गई थी। साथ ही कुछ लोगों को उम्मीद है कि एक या दो महीने में यह वार्ता पुनः शुरू होगी। यदि यह वार्ता पुनः शुरू होती है तो इस बार अमेरिकी वार्ताकारों को तालिबान को और अधिक शर्तें मानने के लिये मज़बूर करना होगा।
- तालिबान को वार्ता की मेज़ पर लाने में एक सक्रिय भूमिका निभाने और इसके लिये ट्रंप की प्रशंसा पाने वाले पाकिस्तान ने भी वार्ता की शीघ्र पुनर्बहाली के साथ इष्टतम संलग्नता की आशा व्यक्त की है।
- यह भी संभव है कि ट्रंप बिना किसी समझौते के ही अमेरिकी सैनिकों की अफगानिस्तान से पुनर्वापसी का निर्णय ले लें। वाशिंगटन पोस्ट द्वारा दी गई रिपोर्ट के अनुसार, अमेरिका के राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार का भी यही दृष्टिकोण था और वे तालिबान के साथ किसी भी समझौते के विरुद्ध थे।

वार्ता को लेकर भारत की चिंता

- तालिबान के आने से अफगान पर पाकिस्तान की पकड़ मज़बूत होगी।
- अफगानिस्तान में भारत की लगभग 5,000 करोड़ रुपए की परियोजनाएँ जारी हैं।
- तालिबान की वापसी से कश्मीर में आतंकी हिंसा बढ़ने की आशंका है।
- तालिबान ने पूर्व में भारत विरोधी गतिविधियों को बढ़ावा दिया है।
- तालिबान अफगान-भारत कारोबार को नुकसान पहुँचा सकता है।

वार्ता के रद्द होने से भारत को लाभ

- अफगान वार्ता के विफल होने पर भले ही भारत ने कोई प्रतिक्रिया नहीं दी है। लेकिन इस वार्ता प्रक्रिया में पाकिस्तान की भूमिका व संलग्नता और तालिबान की सत्ता में पुनर्वापसी की संभावना को लेकर उसमें असंतोष है। भारत का तालिबान के साथ कोई आधिकारिक संपर्क नहीं रहा है। वार्ता में यह विराम नई दिल्ली के लिये तालिबान के कम-से-कम उन तबकों के साथ संपर्क बनाने का एक अवसर हो सकता है जो पाकिस्तान के प्रभाव में नहीं हैं।
- अमेरिका और तालिबान के बीच अफगान शांति वार्ता का रद्द होना भले ही अमेरिका और पाकिस्तान के लिये अच्छी खबर न हो लेकिन यह भारत के हित में है।
- भारत और अफगानिस्तान के संबंध बेहद मज़बूत और मधुर हैं। अफगानिस्तान जितना अपने तात्कालिक पड़ोसी पाकिस्तान के निकट नहीं है, उससे कहीं अधिक निकटता उसकी भारत के साथ है। भारत अफगानिस्तान में अरबों डॉलर की लागत वाले कई मेगा प्रोजेक्ट्स पूरे कर चुका है और कुछ पर अभी भी काम चल रहा है।

1980 के दशक में भारत-अफगान संबंधों को एक नई पहचान मिली, लेकिन 1990 के अफगान-गृहयुद्ध और वहाँ तालिबान के सत्ता में आ जाने के बाद से दोनों देशों के संबंध कमज़ोर होते चले गए। इन संबंधों को एक बार फिर तब मज़बूती मिली, जब 2001 में तालिबान सत्ता से बाहर हो गया...और इसके बाद अफगानिस्तान के लिये भारत मानवीय और पुनर्निर्माण सहायता का सबसे बड़ा क्षेत्रीय प्रदाता बन गया है।

> अमेरिकी सेना का अफगानिस्तान में रहना वहाँ की सुरक्षा से जुड़ा मुद्दा है। अगर अमेरिकी सेना की अफगानिस्तान से वापसी होती है तो वहाँ तालिबान का कब्ज़ा हो जाने की आशंका है। ऐसे में भारत द्वारा वित्तपोषित विकास परियोजनाएँ

रूक सकती हैं।

निष्कर्ष: अमेरिका-तालिबान वार्ता के रद्द होने पर भारत ने भले ही कोई प्रतिक्रिया न दी हो लेकिन अफगानिस्तान के संदर्भ में भारत के स्थायी लक्ष्य भी स्पष्ट हैं- अफगानिस्तान में विकास में लगे करोड़ों डॉलर व्यर्थ न जाने पाएँ, काबुल में मित्र सरकार बनी रहे, ईरान-अफगान सीमा तक निर्बाध पहुँच बनी रहे और वहाँ के पाँचों वाणिज्य दूतावास बराबर काम करते रहें। इस एजेंडे की सुरक्षा के लिये भारत को अपनी कूटनीति में कुछ बदलाव करने भी पड़ें तो उसे पीछे नहीं हटना चाहिये, क्योंकि यही समय की मांग है।

प्रश्न: अमेरिका और तालिबान के बीच शांति वार्ता की सफलता अथवा असफलता भारत के हितों को कहाँ तक प्रभावित कर सकती है? परीक्षण कीजिये।